International Journal of Applied Research 2017; 3(10): 205-208

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(10): 205-208
www.allresearchjournal.com
Received: 18-08-2017
Accepted: 22-09-2017

डॉ0 दीपा गुप्ता
सीनियर असिस्टेंट प्रोफेसर,
प्राचीन भारतीय इतिहास,
संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
कन्या गुरुकुल परिसर,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार, उत्तराखंड, भारत।

सुरेन्द्र सिंह
शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड, भारत।

Correspondence
डॉ0 दीपा गुप्ता
सीनियर असिस्टेंट प्रोफेसर,
प्राचीन भारतीय इतिहास,
संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
कन्या गुरुकुल परिसर,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार, उत्तराखंड, भारत।

सैंधव एवं वैदिक संस्कृति की धार्मिक व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ0 दीपा गुप्ता, सुरेन्द्र सिंह

सारांश
सिंधु सभ्यता कालीन समाज एक धार्मिक समाज था। लोग धर्म में विश्वास करते थे और पूजा–पाठ करते थे। इस विषय में भी लिखित साक्ष्यों का अभाव ही रहा है। केवल पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर ही विद्वानों ने सैंधव धर्म के स्वरूप के संबंध में कुछ अनुमान लगाये हैं। सैंधव सभ्यता से विभिन्न पुरास्थलों से प्राप्त होने वाली मिट्टी की मूर्तियों, पत्थर की छोटी मूर्तियों, पत्थर निर्मित लिंग एवं योनियों, मुहरों तथा मृदभाण्डों पर चित्रित आकृतियेां और कुछ विशिष्ट प्रकार के भवनों एवं भग्नावशेषों के अध्ययन के आधार पर सैंधव धर्म के विषय में अनुमान लगाया गया है। वैदिक युगीन आर्य, इन्द्र, मरुत, मित्र, वरुण, अग्नि, यम आदि बहुत से देवताओं की पूजा किया करते थे, जिन्हें संतुष्ट करने के लिए वे अनेक विधि विधानों का अनुसरण किया करते थे। प्रस्तुत पत्र में सिंधु सभ्यता कालीन पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर सैंधव धर्म तथा वैदिक साहित्य के आधार पर वैदिक धर्म के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है।

मूलशब्दः– सैंधव, वैदिक, धर्म, व्यवस्था

प्रस्तावना
सिंधु सभ्यता से सम्बन्धित अनेक पुरातात्त्विक साक्ष्यों का इस दृष्टि से विशेष महत्व है कि वे भारतीय धर्म पर प्रकाश डालते हैं। उपलब्ध पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर सैंधव धर्म के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है। धार्मिक व्यवस्था के जीवन के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्ति के जो स्रोत मिलते हैं उन में मूर्तियां, मृदभाण्ड तथा अन्य पदार्थों से निर्मित चक्र की आकृतियां तथा कुछ विशिष्ट भवन हैं जिनसे धार्मिक व्यवस्था के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।[1] मातृ–शक्ति की पूजा, पशुपति के रूप में देवोपासना, लिंग तथा योनि पूजा, पशु एवं नाग उपासना, वृक्ष पूजा, जल की पवित्रता, मूर्ति–पूजा आदि सैंधव धर्म के विभिन्न अंग प्रतीत होते हैं। इनके अतिरिक्त अभिचार एवं परलोकवाद के संबंध में भी पुरातात्त्विक साक्ष्यों से कुछ प्रकाश डाला जा सकता है।[2]

वैदिक युग के आर्य विविध देवताओं की पूजा किया करते थे। देवता शब्द आते ही सर्वप्रथम यह प्रश्न उठता है कि देवता किसे कहते हैं? देव या देवता का अभिप्राय है– कोई दिव्य शक्ति। वह शक्ति जो मानव जगत का कुछ उपकार करती है। उसे किसी रूप में कुछ देती है। जिसमें कुछ दिव्य या असाधारण क्षमता है, उसे देवता कहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि देव वह है जो कुछ देता है, स्वयं प्रकाशमान है या दूसरों को प्रकाशित करता है।[3] संसार का सृष्टा, पालक, संहारकर्ता एक ईश्वर है। यह विचार वैदिक आर्यों में भलीभांति विद्यमान था। उनका कथन था कि इन्द्र, मरूत, मित्र, वरूण, अग्नि यम इत्यादि सब एक ही सत्ता के विविध नाम हैं और उस एक सत्ता को ही विद्वान लोग इन्द्र, मित्र आदि विविध नामों से पुकारते हैं।[4]

सैंधव सभ्यता एवं वैदिक संस्कृति के प्रमुख देवी–देवता
पुरुष एवं रूद्र देवता
मोहनजोदड़ो से मिली तीन मुहरों पर एक पुरुष का अंकन है जिसे सर जॉन मार्शल तथा अन्य विद्वानों ने शिव पशुपति का आद्यरूप माना है। तीन मुहरों में एक का चित्रण अधिक विस्तृत है। इसमें पुरुष देव के तीन मुख एवं तीन नेत्र दृश्य गए हैं। वह योगमुद्रा में एक पीठिका पर कूर्मासन में बैठा हुआ है और उसके नेत्र योगमुद्रा में दर्शाये गए हैं। उसके दोनों हाथ अनेक भुजबंदों से अलंकृत है। उसके सिर के ऊपर या पीछे त्रिशूल अथवा सींग के आकार जैसी शिरोभूषा है। उसके

दाईं ओर हाथी तथा व्याघ्र की आकृतियां बनी हैं और बाईं ओर गैंडे व भैंसे की। जिस पीठासन पर वह विराजमान है। उसके निचले भाग में दो हिरनों की आकृतियां अंकित हैं।[5] इस पुरुष देव के अभिज्ञान के संबंध में सभी विद्वान एक मत नहीं है। सेलेतोर ने इसे अग्निदेव से समीकृत किया। हर्बर्ट सुल्लिवज तथा एम. के. धवलीकर ने इसे वन्य पशुओं की देवी माना है और जयभगवान ने जैन अर्हंत। एल. एम. जोशी के अनुसार यह किसी सिद्ध पुरुष का अंकन है। जबकि केदारनाथ शास्त्री ने इसे रूद्र से मिलता–जुलता एक संश्लिष्ट देवता माना है। एम. वी. एन. कृष्णराज ने इसका अभिमान इंद्र से किया है।[6] मुद्रांक के दूसरी ओर बीच के भाग में पीठासन पर बैठे एक पुरुष की आकृति है और दाहिनी ओर एक बाड़े में कुछ पशु अंकित हैं। पुरुष के बाईं ओर सिंह के शिकार का दृश्य है। इस पुरुष की पहचान शिव से की गई है जिन्हें अपने वाहन वृषभ तथा आयुध त्रिशूल के साथ दर्शाया गया है और मुद्रांक पर चित्रित भवन के शिव मंदिर होने की संभावना जताई गई है। यह अंकन मार्शल द्वारा प्रस्तावित शिव पशुपति के अभिज्ञान की पुष्टि करता है। मोहनजोदड़ो से मिली दो अन्य मोहरों पर पुरुष देवता का अंकन अति संक्षिप्त है। ऐतिहासिक काल में शिव की कल्पना एक शिकारी के रूप में की गई थी। हड़प्पा से पाई गई एक मोहर पर एक सींग युक्त शिकारी पुरुष पत्तियों की वेशभूषा के साथ दर्शाया गया है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह शिव के किरात रूप का चित्रण हो सकता है। गुमला, कोटदीजी तथा कालीबंगा के प्राग्सैंधव मृत्पात्रों पर श्रृंगी देवता के चित्रण है। ये अंकन बलूचिस्तान, सिंध, पंजाब एवं राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में प्राग्सैंधव तथा सैंधव धर्म में इस देवता के महत्वपूर्ण होने का संकेत देते हैं।[7]

वैदिक साहित्य के स्रोतों में ''ऋग्वेद'', ''यजुर्वेद'', ''अथर्ववेद'' के अनेकानेक सूक्तों में रुद्र का वर्णन है। ''यजुर्वेद'' और ''अथर्ववेद'' में रुद्र को एक महान योद्धा और सेनापति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। रूद्र को जटाजूटधारी, पगड़ीधारी कहा गया है। यह सोने का बना है और हजारों व्यक्तियों को मार सकता है। सैकड़ों बाणों से यह युक्त है। रुद्र द्युलोक, भूलोक एवं अंतरिक्ष लोक में सर्वत्र व्याप्त है। रुद्र के विषय में ''यजुर्वेद'' का कथन है कि वह द्युलोक में वर्षा के रूप में है। अंतरिक्ष में वायु तथा पृथ्वी पर अन्न के रूप में है। रुद्र से प्रार्थना की गई कि कि वह सारे संसार को निरोगी और प्रसन्नचित्त रखे। ''यजुर्वेद'' में उसको त्रयम्बक कहा गया है। उसकी तीन शक्तियां प्रमुख हैं– कर्त्तत्व (संसार को जन्म देना), भर्त्तत्व (पालन करना) और हर्त्तत्व (संहार करना)[8] रुद्र एक साथ ही विनाश ओर कल्याण दोनों के देवता कहे गये हैं। रुद्र में रोगों से मुक्ति दिलाने की सामर्थ्य है। किसी देवता ने अगर उपकार किया है तो उससे मुक्ति की प्रार्थना रुद्र से ही की जाती है। लेकिन ''ऋग्वेद'' में इन्हें अधिक महत्व नहीं मिला है। इन पर केवल तीन सूक्त ही कहे गए हैं। शेष कुछ ऋचाओं में सोम आदि के साथ इनका नामोल्लेख है। यह उग्र और विनाशकारी रूप में चित्रित है। उनकी स्तुति में यह प्रार्थना की जाती है कि वे हमारे अश्वों और गायों तथा परिवारजनों को अपने क्रोध का शिकार न बनावें। साथ में रुद्र में यह गुण हैं कि वह स्तुतिगान करने वाले के प्रति दया प्रदर्षित करते हैं और उसकी रक्षा करते हैं। वह चिकित्सक की भूमिका भी निभाते हैं और सहऔषधियों के ज्ञाता है। (सहस्र ते स्वपिवात भेषजा) रुद्र ऐसे देवता हैं जिन्हें ''ऋग्वेद'' में तो अधिक महत्व नहीं मिला, पर बाद में पुराणों आदि में इनके महत्व में बहुत अधिक बढ़ोतरी हुई। पुराणों में ही रुद्र के ये पर्यायवाची दिए हैं– भव, शर्व, यम, मृत्यु, बभ्रु, नीलकण्ठ, पशुपति। ''यजुर्वेद'' में रुद्र को गिरीश, नीलग्रीव, सहस्त्राक्ष, पशुपति, जगतपति, क्षेत्रपति, वनपति, वृक्षपति, सेनानी, गणपति, शिव, शंकर, शंभु, भव, शर्व, शितिकण्ठ आदि कहा गया है।[10]

मातृशक्ति की पूजा

सिंधु घाटी के क्षेत्र और बलूचिस्तान से बड़ी संख्या में नारी मृण्मूर्तियां मिली हैं। इसके अलावा और भी देशों सीरिया, मेसोपोटामिया, एशिया माईनर, ईरान आदि से भी स्त्री मूर्तियां प्राप्त हुई हैं।[11] विभिन्न सैंधव स्थलों से स्त्री मूर्तियां प्राप्त हुई हैं इससे यह अनुमान लगाया गया है कि सैंधव लोग मातृदेवी की पूजा करते थे। वे इसे प्रकृति के रूप में भी पूजते थे।[12] भारत में मातृदेवी की पूजा अन्य देशों सें अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती थी। इस शक्ति की जड़े भारत में सबसे गहरी पाई गई हैं। ऐसा माना जाता है कि मातृदेवी धरती माता से ही उत्पन्न हुई। मातृदेवी को लोग अपने रक्षक के रूप में मानते थे और पुत्र प्राप्ति के लिए भी मातृदेवी की पूजा करते थे। मातृदेवी को महामाता कहा गया है, जो बाद में विकसित होकर शक्ति कहलाई। मातृदेवी को प्रकृति माता भी कहा गया है।[13]

वैदिक संस्कृति में देवी के रूप में सरस्वती दिखाई देती है। एक ऋचा में उसे 'नदीतमे' के साथ–साथ 'अम्बितमे' और 'देवितमे' भी कहा गया है। पहले मंडल में कहा गया है – इलादेवी, सरस्वती और मही, सुख देने वाली और विनाशरहित तीनों देवियां कुशों पर विराजें।[14] वशिष्ठ ने सातवे मण्ल में कहा है– हे सरस्वती, इस यज्ञ का हवन करते हुए हम स्तुतियों द्वारा तुमसे धन प्राप्ति की अभिलाषा करते हैं। तुम हमारी स्तुती को स्वीकार करो। हम तुम्हारी शरण में उसी प्रकार रहते हैं जिस प्रकार पक्षी वृक्ष के आश्रम स्थल में रहता है।[15]

ऋग्वेद में इला का अर्थ अन्न के रूप में लिया गया है। ऋग्वैदिक समाज कृषि से अच्छी तरह परिचित हो चुका था और दूध तथा अन्न उसका मुख्य भोजन था। चौदहवीं शताब्दी के भाष्यकार सायणाचार्य ने इला को पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी कहा है। विश्वमित्र ने तीसरे मंडल में सरस्वती और भारती के साथ इला देवी की स्तुती की है। [16]

अग्निपूजा

हिन्दू धर्म के सभी कृत्यों का अग्नि से संबंध होना बहुत ही सामान्य है। कई वैदिक यज्ञों में गृह पूजाओं में हवन होना, हवन कुण्ड में अग्नि प्रज्जवलित करना पूजन विधि का आवश्यक विधान है। कुछ इसी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान हड़प्पा काल में भी होते थे। इसका प्रमाण कालीबंगा, बनावली, राखीगढ़ी और लोथल से मिलता है।

आवासीय नगर के घरों में देखा गया है कि एक कमरा विशेष रूप से अग्नि कुण्ड के लिए सुरक्षित होता था। जब तक कि इसके लिए कोई अन्य उपयुक्त नाम नहीं मिलता, हम इसे अग्नि–वेदिका कहेंगे।[17] वेदियों में कोयला और राख मिलते हैं। कालीबंगा के नगर क्षेत्र के पूर्वोत्तर में मिट्टी के एक घेरे के भीतर भी कुछ अग्नि वेदियां पाई गई हैं। इनके निकट पकी ईंटों से निर्मित एक आयताकार कुण्ड था। जिसमें गाय/बैल एवं बारहसिंगा की हड्डियां मिली हैं जो यज्ञ में पशु बलि का प्रमाण है। ये वेदियां सार्वजनिक उपयोग के लिए थीं। बालू (जिला कैथल, हरियाणा) में सैंधव संस्कृति के स्तर में एच क्षेत्र में मिले एक बड़े अग्नि स्थल से भी धार्मिक महत्व तथा सामुदायिक प्रयोग की संभावना व्यक्त की गई है।[18]

कालीबंगा के नगर क्षेत्र के कई मकानों के एक कक्ष में 1 ग 0.50 ग 0.25 मीटर आकार की अग्निवेदियां प्राप्त हुई है। इनमें मिले राख, कोयला एवं मृत्पिंड प्रमाणित करते हैं कि लोग अपने घरों में ही यज्ञादि कर लेते थे। बनावली में भी कुछ घरों में अग्नि वेदियां पाई गईं। लोथल में आयताकार एवं वृताकार वेदियां मिली हैं। एस. आर. राव के अनुसार रंगपुर में भी कुछ घरों में अग्निपूजा के संकेत प्राप्त हुए। राखीगढ़ी के खात एस. 22 (प्राग्सैंधव) में अग्नि की एक वेदी और इसके निकट ईंटों से निर्मित एक कुण्ड में पशुओं की हड्डियां पाई गई है और खात

टी 23 में बनावली के समान वृताकार तीन अग्निवेदियां मिली हैं।[19]

वेदों में अग्नि मूर्धन्य देव है। यह भौतिक अग्नि से लेकर परमात्मा तक का बोधक है। अग्नि मुख्य रूप से यज्ञिक अग्नि का बोधक है। सभी यज्ञों का आधार अग्नि है। अतः अग्नि के बिना कोई दैवी कार्य असंभव है। अग्नि देवों का दूत है और उनका मुख है। इसके द्वारा ही देव समस्त द्रव्यों को ग्रहण करते हैं। अग्नि सभी देवों को उनका अंश पहुंचाता है।[20]

''अथर्ववेद'' में वर्णन है कि अग्नि विभिन्न रूपों में इन सभी पदार्थों में विद्यमान है– जल में विद्युत के रूप में, मेघ में बिजली, मनुष्य में स्फूर्ति, पत्थरों में चिंगारी, वनस्पतियों में ऊष्मा, पशु–पक्षियों में स्फूर्ति के रूप में है। वेदों में तीन अग्नियों का उल्लेख मिलता है। गार्हपत्य, आह्वनीय और दक्षिणाग्नि आदि है। अग्नि का भोजन काष्ठ और घृत है।[21]

जलपूजा

सैंधव संस्कृति में जल पूजा के प्रचलन का प्रत्यक्ष प्रमाण तो नहीं मिलता किन्तु कुछ अप्रत्यक्ष साक्ष्य अवश्य उपलब्ध हैं। इस मान्यता का मूलाधार मोहनजोदड़ो के गढ़ी क्षेत्र में मिला विशाल स्नानागार है। इसके मध्य में एक स्नानकुण्ड है जिसमें स्नान के लिए उतरने के लिए चारों ओर सीढ़ियां थीं। कुण्ड के चारों ओर बरामदे, बरामदों के पीछे कमरे तथा आठ स्नानगृह थे। यह दो मंजिला इमारत थी। पुराहितों आदि के रहने के लिए ऊपरी मंजिल में कक्ष बने थे। आकार–प्रकार के आधार पर तथा अनुवर्ती कालों में नदियों एवं तड़ागों आदि में धार्मिक उत्सवों पर स्नान करने की परम्परा के प्रचलन के आधार पर इस स्नानागार को कई विद्वानों ने सार्वजनिक धार्मिक अनुष्ठान स्थल तथा जल की पवित्रता का प्रमाण माना है।[22]

कतिपय अन्य स्थलों पर भी जल की पवित्रता दर्शाने वाले साक्ष्य प्रकाश में आये हैं। उदाहरण के लिए कालीबंगा में अग्नि वेदिकाओं के निकट ईंटों से निर्मित एक कूप तथा स्नान के लिए बने पक्के फर्श के अवशेष मिले हैं। यज्ञादि करने से पूर्व पुरोहित अन्य लोग इस कुएं व फर्श का प्रयोग स्नान के लिए करते होंगे।[23]

ऋग्वेद में आपः को जल की देवी कहा गया है। ऋग्वेद के चार सूक्तों में आपः का वर्णन है। कुछ अन्य ऋचाओं में भी नाम मिलता है। आपः की समानता स्नेह आपूरित जननी से की गई है। जिस तरह जननी अपना स्नेह अर्पित करती है उसी तरह आपः अपने जल से हमें जीवनदान देती है। आपः का जल हमें रोगमुक्त करके स्वस्थ बनाता है। हमें शक्ति देने वाला है और अमृत की भांति जीवनदान देने वाला है। ऋग्वेद में कहीं कहीं आपः की सोम से समीपता दिखाई गई है, क्योंकि सोम में भी जल की आवश्यकता होती है।[24]

पशु–पूजा –

अनेक सैंधव मुहरों पर पशुओं के अंकन से ज्ञात होता है कि सैंधव लोग पशु पूजा करते होंगे। इनके अतिरिक्त मिट्टी, पत्थर तथा धातु की बनी हुई पशुओं की कुछ मूर्तियां मिली हैं। मुहर नं. 303 में दो चीते दिखाई देते है। एक ओर एक योगी बैठा हुआ है। वास्तविक पशुओं की पूजा में भैंस भारतीय नील गाय, ऋषभ, बैल, हाथी, गैंडे, बाघ तथा छोटे सींगवाले बैलों का चित्रण है। इन पशुओं का मुद्राओं और ताम्र पट्टियों पर अंकन है।[25]

सबसे प्रचलित पशु कुबड़ तथा बिना कुबड़ के बैल थे। इनका चित्रण अनेक मुद्राओं पर है। सैंधव समाज में संभव है कि बैल को शिव का वाहन माना जाता था। कुछ सीलों पर बैल बकरी और हाथी का अंकन है। लोथल से एक सील प्राप्त हुई है। जिस पर बकरी का अंकन है तथा बनावली से प्राप्त मुहर पर एक चीते का अंकन है। आज भी भारत में पशु पूजा प्रचलित है। सैंधव समाज में भी लोग पशु पूजा करते थे। क्योंकि पशुओं के पास बल और विशिष्ट गुण थे। जो मनुष्य के लिए काफी उपयोगी थी।[26]

ऋग्वेद के दसवें मण्डल के सूक्त उन्तीस की आठ ऋचाएं गाय को लेकर कही गई हैं। इसकी पहली ऋचा में कहा गया है कि गायों! तुम हमारे पास आ जाओ। हमारे अलावा किसी ओर के पास मत जाओ। हे धनयुक्त गायों, हमें अधिक दूध दो। बार–बार धन देने वाले अग्नि और सोम तुम हमें धन दो।[27]

इस तरह हम देखते हैं कि ऋग्वैदिक ऋषियों ने गायों को अपने मन के उच्च आसन पर बैठा रखा था। गाय का दूध अत्यन्त पुष्टिकारक है, यह भी इन ऋचाओं में ध्वनित होता है। जाहिर है, ऐसे पुष्टिकारक दूध देने वाली गायें अघन्या ही रही होंगी। घोड़ा ''ऋग्वेद'' काल में बहुत उपयोगी पशु रहा था, परन्तु उसे लेकर किसी ऋग्वैदिक ऋषि ने इस तरह के उद्‌गार व्यक्त नहीं किये हैं। क्योंकि पवित्रता और लगाव की पुष्टि प्राप्त नहीं था।[28]

वृक्ष पूजा

सैंधव सभ्यता से सम्बन्धित मुहरों एवं मृद्‌भाण्डों इत्यादि से पीपल, बबूल, नींबू, नीम, खजूर, ताड़ के वृक्षों का चित्रण मिलता है। मृद्‌भाण्डों पर केले के पौधों का भी अंकन उपलब्ध होता है। कुछ मुहरों पर पीपल के वृक्ष को बाड़ से घिरा हुआ दिखाया गया है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मुहर पर पीपल के एक वृक्ष के तने से एकश्रृंगी दो पशुओं का सिर निकलते हुए दिखाया गया है। एक अन्य मुद्रा पर एक नग्न देवता को वृक्ष की शाखाओं के मध्य खड़ा अंकित किया गया है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मुद्रा पर दो व्यक्ति हाथ में एक–एक वृक्ष धारण किये हुए हैं। हड़प्पा से प्राप्त एक मुद्रांक में पीपल की एक टहनी को झुका हुआ दिखलाया गया है। टहनी के गोल घेरे में एक देवता को जांघिया की तरह का वस्त्र पहने हुए दिखलाया गया है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मुहर में एकश्रृंगी दो पशुओं को पीपल की पत्तियों का चित्रण प्रायः मिलता है। इन साक्ष्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि सिंधु सभ्यता के लोग वृक्षों को पवित्र मानते थे और उनकी पूजा करते थे। कुछ विद्वानों को ऐसी धारणा है कि पीपल के पेड़ में सिंधु सभ्यता का मुख्य देवता निवास करता था। फलतः इसे अत्यन्त पवित्र माना जाता था। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि कालान्तर में पीपल के पेड़ की उपासना एक स्वतन्त्र रूप धारण कर लेती है। आज भी भारत में पीपल, वट, केला, तुलसी आदि की पूजा की जाती है।[29]

''अथर्ववेद'' से हमें यह ज्ञात होता है कि युद्ध में विजय और पुत्र प्राप्ति के लिए लोग अश्वत्थ (पीपल) की पूजा करते थे। इस आधार पर कल्पना की गई है कि शायद सैंधव सभ्यता के लोग भी पीपल की पूजा इन उद्देश्यों से करते रहे होंगे। केला, तुलसी, वट, नीम, बबूल का भी शायद धार्मिक महत्व था।[30] वैदिक देवताओं में सोमदेवता का महत्वपूर्ण उल्लेख है। ''ऋग्वेद'' का पूरा नवम मण्डल उन्हीं को समर्पित है। सोमलता से ही सोमरस की प्राप्ति होती है। ''ऋग्वेद'' का सोम अवेस्ता में 'हओम' है। सोमलता के ऊपरी भाग को पत्थर के सिलवट पर पीस कर निकाला जाता था। उसे ऊन की छलनी से छानकर शुद्ध करते थे। पुनः इसे पेय की दृष्टि से ग्रहण करते थे। सोम की स्तुति अमृततुल्य मृतसंजीवनी रूपी पेय के रूप में हुई है।[31] सोम एक प्रकार का पौधा था, जिसे कूटकर सोमरस तैयार किया जाता था। यज्ञ के समय उसे देवताओं को चढाया जाता था और ऋत्विक, यज्ञमान आदि स्वयं पीते थे। वसिष्ठ, राहूगण आदि ऋषियों ने सोमरस के महत्व का वर्णन किया है। सोमरस के पान से अमरत्व एवं सौभाग्य की प्राप्ति होती है। वह शक्तिप्रदायक, स्फूर्तिदायक एवं हर्ष का प्रदाता है। ऋग्वेद में सोम के महत्व का जो वर्णन है उससे स्पष्ट है कि तत्कालीन धार्मिक जीवन में सोम का कितना महत्व था। इस प्रकार ऋग्वैदिक युग में धर्म और यज्ञ

दोनों ही मानव जीवन के अभ्युदय एवं निःश्रेयस के साधन रहे है। मानव–जीवन के विकास में दोनों का योगदान रहा है, यही कारण है कि यज्ञ को धर्म का अंग मान लिया गया था।[32]

निष्कर्ष

ऊपर लिखित विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि सैंधव एवं वैदिक संस्कृति की धार्मिक व्यवस्था में काफी तुलना पाई गई है क्योंकि दोनों सभ्यताओं की धार्मिक तुलना कहीं–कहीं पर समान है तो कहीं–कहीं पर असमान दिखाई पड़ती है। परन्तु सैंधव सभ्यता के धर्म के पुरातात्त्विक साक्ष्य मिलते हें। जबकि वैदिक धर्म के साक्ष्य हमें लिखित रूप में मिलते हैं। कहीं–कहीं दोनों सभ्यताओं की समानता हमें इस प्रकार से भी मिलते हैं कि कालीबंगा, लोथल, बनावली पुरास्थलों से हमें वेदिकाओं के साक्ष्य मिले हैं जो यह दर्शाते है कि वहां पर वैदिक संस्कृति के धर्म के साक्ष्य उपस्थित थे। प्रतीत होता है कि दोनों ही सभ्यताओं में यज्ञ जैसी व्यवस्था विद्यमान थी। पशुपति के रूप में सैंधव धर्म एवं वैदिक धर्म के रूप में शिव को देवता के रूप में माना गया है। नागपूजा, पीपल की पूजा, सूर्य पूजा दोनों ही सभ्यताओं में दिखाई पड़ती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दोनों सभ्यताओं की धार्मिक व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन काफी मान्य रखता है। हमने प्रस्तुत अध्ययन में ऊपर की इन प्रवृतियों को दृष्टि में रखते हुए हड़प्पा व वैदिक सभ्यता के देवताओं और विश्वासों को समझने का प्रयत्न किया गया है।

संदर्भ

1. पाण्डेय, जयनारायण, पुरातत्त्व विमर्श, प्रमानिक पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 1997, पृ0 381
2. पाण्डेय, जयनारायण, सिंधु सभ्यता, प्राच्य विद्या संस्थान, इलाहाबाद, 1999, पृ0 64
3. गुप्ता, दीपा, वैदिक युगीन सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 2011, पृ0 101
4. ऋग्वेद, 1/164/46
5. मिश्र, श्याम मनोहर, सैंधव संस्कृति, भारत बुक सेंटर, लखनऊ, 2003, पृ0 59
6. वही, पृ0 60
7. वही, पृ0 61
8. गुप्ता, दीपा, पूर्वोक्त, पृ0 107
9. सिंह, कृपाशंकर, ऋग्वेद हड़प्पा सभ्यता और सांस्कृतिक निरंतरता, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ0 216
10. द्विवेदी, कपिल देव, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2014, पृ0 303
11. ब्रिजेंट एण्ड रेमंड आलचिन, द राईज ऑफ सिविलाइजेशन इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, सेलेक्ट बुक सर्विस, नई दिल्ली, 1983 पृ0 214
12. मार्शल, सर जॉन, मोहनजोदड़ो एंड द इण्डस सिविलाइजेशन, आर्थर प्रोब्स्थीन, लंदन, 1931, पृ0 52
13. अपार्ट, जी., ऑन द ओरिजनल इन अवीटैन्ट्स ऑफ भारत वर्ष इन इण्डिया, पृ0 449–5
14. ऋग्वेद, 1/13/9
15. ऋग्वेद, 7/95/5
16. सिंह, कृपाशंकर, पूर्वोक्त, पृ0 239
17. नारायण, उषा, सरस्वती बह रही है, आर्यन बुक्स इन्टरनेशनल, नई दिल्ली, 2017, पृ0 109
18. मिश्र श्याम मनोहर, पूर्वोक्त, पृ0 66
19. वही, पृ0 67
20. गुप्ता, दीपा, पूर्वोक्त, पृ0 104
21. अथर्ववेद, 18/4/11
22. मिश्र, श्याममनोहर, पूर्वोक्त, पृ0 70
23. वही, पृ0 71
24. सिंह, कृपाशंकर, पूर्वोक्त, पृ0 244–45
25. राव, एस. आर., डाउन एण्ड डेबुलेषन ऑफ द इण्डस सिविलाइजेशन, आदित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ0 293
26. वही, पृ0 294
27. ऋग्वेद, 10/19/1
28. सिंह, कृपाशंकर, पूर्वोक्त, पृ0 249
29. पाण्डेय, जयनारायण, पूर्वोक्त, पृ0 70
30. अथर्ववेद, 3/6/2
31. चक्रवर्ती, रणवीर, भारतीय इतिहास आदिकाल तक, ओरियंटल ब्लैकस्वान, हैदराबाद, 2012, पृ0 107
32. द्विवेदी, पारसनाथ, वैदिक साहित्य का इतिहास, चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी, 2014, पृ0 73